R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-4 जून 2020

मङ्गलायतन

अप्रेले-मई-जून का E - संयुक्तांक

दीक्षाकल्याणक : शुद्धता की आरोहण

राजकुमार महावीर को यौवनावस्था में जातिस्मरणपूर्वक संसार की क्षणभंगुरता का विचार आने पर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वे बारह भावनाओं के चिन्तवनपूर्वक जैनेश्वरी दीक्षा हेतु तत्पर होते हैं; तभी लौकान्तिकदेव आकर प्रभु के वैराग्य की अनुमोदना करते हैं तथा देवों के साथ सौधर्म इन्द्र तपकल्याणक मनाने आते हैं। वे देवोपनीत शिविका में आरूढ़ होकर वन की ओर गमन करते हैं और वहाँ वस्त्रादि त्यागकर, 'नमः सिद्धेभ्यः' बोलकर, केशलोंच करके, मुनिराज वर्धमान दीक्षित होकर दृढ़ आत्मसाधना में लीन हो जाते हैं। मुनिराज को तत्काल मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो जाता है। ध्यान से बाहर आने पर योग्य विधिपूर्वक आहार भी ग्रहण करते हैं। प्रथम आहारदाता के यहाँ देवकृत पंचाश्चर्य प्रगट होते हैं।

जो संसार विषैं सुख हो तो तीर्थंकर क्यों त्यागें ?

तीर्थधाम मङ्गलायतन आपका हार्दिक स्वागत करता है

आपका सहयोग अपेक्षित है

1. भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन	
एक वर्ष के लिए (एक विद्यार्थी)	25,000/-
सम्पूर्ण अध्ययन काल के लिए (एक विद्यार्थी)	1,00,000/-
2. अतिथि भोजनशाला	
एक माह का भोजन	2,00,000/-
एक दिन का भोजन (जलपान सहित)	15,000/-
एक समय का भोजन	6,100/-
एक समय का जलपान	3,100/-
3. तीर्थधाम मङ्गलायतन : ध्रुवपूजन तिथि	
सभी जिनमन्दिर	5,100/-
प्रत्येक जिनमन्दिर हेतु ध्रुवपूजन तिथि	1,100/-
4. 'मङ्गलायतन' मासिक पत्रिका	
अपनी ओर से एक अंक के प्रकाशन हेतु	21,000/-
आजीवन सदस्यता	500/-
5. 'मङ्गल वात्सल्य निधि'	
आजीवन सदस्यता (प्रति माह)	1,000/-

आप अपनी सहयोग राशि सीधे बैंक में भी जमा करवा सकते हैं।

नाम - **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़**

बैंक - **पंजाब नेशनल बैंक** ब्रांच - **रेलवे रोड, अलीगढ़**

A/c No. - 1825000100065332 IFSC - PUNB0001000

PAN - AABTA0995P

नोट - भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है।

मङ्गलायतन

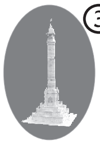

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-4 (वी.नि.सं. 2546 ; वि.सं. 2076) अप्रेल-मई-जून 2020

आया है सारा सिद्धालय...

आया है सारा सिद्धालय, ज्ञान में मेरे।
मेरे ज्ञान में ही रहना, सब सिद्ध सिद्ध बन के ।।टेक ।।

सूना पड़ा था ज्ञान, सब सिद्धि के बिना।
सूनी पड़ी थी दृष्टि, सब सिद्ध के बिना।
भरा है मेरा प्रांगण, सिद्ध सिद्धि दाता बन के ।।1 ।।

गुण आठ से अलंकृत, सिद्ध रूप मैंने देखा।
जन्म मरण के बिना, लोकाग्र वासी देखा।
कर्मों से रहित सिद्ध, गुण से सहित मैं देखा ।।2 ।।

द्रव्य गुण से मैं हूँ पूरा, पर्याय से भी पूरा।
उपयोग से भी पूरा, पूरा सदा ही पूरा।
पूर्णता, मैंने निज में, सिद्धों के सम है देखी ।।3 ।।

सिद्धों की ये डगरिया, बन गई मेरी नजरिया।
बन गई मेरी नजरिया, बस गई मेरी नजरिया।
दृष्टि है मेरी पलटी, सिद्धों ने मुझमें आके ।।4 ।।

साभार :- मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
स्व. पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-

श्रीमती सूर्याबहिन

धर्मपत्नी

महेन्द्रशाह 'मन्नूभाई'

13 - एशले रोड, नार्थटन
हीथ, सरे - सी.आर. 7 6
एच.डब्ल्यू. (यू.के.)

क्या - कहाँ

धर्मात्मा की गम्भीर परिणति.......... 5
श्री समयसार नाटक 13
आचार्यदेव परिचय शृंखला....... 22
श्री मोक्षमार्गप्रकाशकजी.......... 23
समाचार-दर्शन........................ 29

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

धर्मात्मा की गम्भीर परिणति का स्वरूप समझानेवाला आत्म-अनुभूतिप्रेरक आनन्दमय प्रवचन

1. इस नियमसार शास्त्र में निश्चय प्रत्याख्यान की बात चल रही है। प्रत्याख्यान करनेवाले जीव को प्रथम तो परभाव से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय और अनुभव होता है।
2. जिन परभावों को छोड़ना है, उन्हें स्वयं से भिन्न जाने बिना किस प्रकार छोड़ेगा?
3. अन्तर्मुख होकर अपने ज्ञानस्वभाव का अनुभव करने से ज्ञान में से परभाव का त्याग सहज ही हो जाता है, क्योंकि ज्ञान परभाव के त्यागस्वरूप ही है।
4. परभावों से भिन्न, मैं स्वयं आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसे अपने आनन्दस्वरूप में रहूँ, वही सुख है और वही परभाव का त्याग है।
5. पहले आत्मा के स्वभाव में मग्न होकर ऐसी प्रतीति करने से इन्द्रियातीत आनन्द का अनुभव और सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होने पर श्रद्धा में समस्त परभावों का अत्यन्त प्रत्याख्यान हो जाता है।
6. सम्यग्दृष्टि स्वयं को केवलज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वरूप अनुभव करता है, उसमें परभाव का एक अंश भी नहीं होता। ऐसे आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान के बल द्वारा निजस्वरूप में एकाग्रता होने पर परभावों का प्रत्याख्यान हो जाता है।
7. स्वरूप में स्थित ज्ञान स्वयं परभाव के त्यागस्वरूप होने से प्रत्याख्यान है। ज्ञानभाव की जो अस्ति है, उसमें रागादि विरुद्ध भावों की नास्ति है।
8. प्रथम ज्ञान और रागादि का अत्यन्त स्पष्ट भेदज्ञान करना चाहिए। सच्चा भेदज्ञान करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।
9. अहो, जहाँ आत्मा का ऐसा स्वरूप अपने अनुभव में आया वहाँ दूसरों से पूछना नहीं रहता। समयसार की 206वीं गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! अन्य से न पूँछ... ज्ञानस्वरूप आत्मा अनुभव में आने पर तुझे स्वयं सब समाधान हो जायेंगे। सन्देह नहीं रहेगा, तथा पूँछना भी नहीं पड़ेगा।

10. अहा, ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करानेवाला यह समयसार शास्त्र जगत का अद्वितीय चक्षु है, आत्मा को प्रकाशनेवाला अजोड़ परमागम है। कुन्दकुन्दस्वामी जैसे महान आचार्यदेव ने भगवान की वाणी सुनकर तथा अपने आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदनरूप आत्मवैभव द्वारा इस परमागम की रचना की है। जगत के मुमुक्षु जीवों को आत्मा का अद्भुत वैभव दिखता है।
11. आत्मा तो स्वयं ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप ही सत्य है, वही अनुभव करनेयोग्य है, वही कल्याणरूप है।—इस प्रकार अपने सत्य ज्ञानस्वरूप का निर्णय करके हे जीव! तू अपने ज्ञान से ही सन्तुष्ट हो... तृप्त हो... उसमें स्वयं तुझे परम सुख का अनुभव होगा, फिर तुझे अन्य से पूँछना नहीं पड़ेगा। वचन-अगोचर ऐसे अपूर्व आत्मिक सुख का तुझे अनुभव होगा; वह सुख तुझे स्वयंमेव अपने स्वाद में आयेगा। तू स्वयं वह सुख है, फिर अन्य से क्यों पूँछना पड़े?
12. अपनी वस्तु अपने में देखी, साक्षात् अनुभव किया, वहाँ सन्देह क्या? ज्ञानस्वरूप मैं स्वयं सत्य हूँ, मैं स्वयं ही कल्याण हूँ, मैं ही अनुभवी हूँ और मैं ही सुखस्वरूप हूँ—ऐसा पहले दृढ़ निर्णय करके संवेदन-प्रत्यक्ष से स्वानुभव किया, वहाँ अब किससे पूँछना रहा?
13. अपने पास ही मैंने अपना तत्त्व देखा, और मेरा मोह नष्ट हो गया; अब मैं सर्व कर्मों से अत्यन्त रहित, चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही आत्मा द्वारा वर्तता हूँ। निर्विकल्प-वीतरागी परिणति द्वारा मैं स्व में वर्तता हूँ—इस प्रकार धर्मी अपने को अनुभव करता है, उसे संवर-निर्जरा है, उसे प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान है, उसे सुख और धर्म है।
14. धर्मी को नि:शंक प्रतीति है कि मैं राग में नहीं, मैं निर्विकल्पभाव द्वारा अपने चेतनस्वरूप में ही वर्तता हूँ।
15. पहले राग में-विकल्प में एकत्वबुद्धि के कारण चैतन्य के निधान को ताले में बन्द कर रखा था; अब विदित हुआ कि राग से मेरा चैतन्यतत्त्व अत्यन्त भिन्न है, वही अपूर्व आनन्द के अनुभव द्वारा चैतन्य का खजाना खुल गया। आत्मा में आनन्द का अवतार हुआ।

16. ऐसे सम्यग्दृष्टि-सम्यग्ज्ञानी-सत् चारित्रवन्त धर्मात्माओं को मैं नमस्कार करता हूँ। अहा! वे तो जगत के धर्मरत्न हैं! सम्यग्दर्शन, वह मोक्षमार्ग का रत्न है। उसे धारण करनेवाले धर्मात्मा तो धर्मरत्न हैं। भव-भव के क्लेश का नाश करने के हेतु मैं नित्य उनकी वन्दना करता हूँ।
17. किस प्रकार वन्दना करता हूँ?—कि निर्विकल्पभाव द्वारा उन जैसे ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा में वर्तता हुआ, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। राग में वर्तने से सच्चा नमस्कार या सच्ची भक्ति नहीं होती, पंच परमेष्ठी ज्ञानी-धर्मात्माओं को सच्चा नमस्कार करनेवाले को अपने ज्ञान और राग की भिन्नता प्रगट हो गई है। 'ऐसे भाव द्वारा मैं ज्ञानी को नमस्कार करता हूँ।'
18. सिद्ध भगवान आदि पंच परमेष्ठी भगवन्त अपने शुद्ध आत्मा में ही स्थिर हैं, इसलिए उन्हें नमस्कार करनेवाला जीव शुद्ध आत्मा की ओर झुकता है—उसी में उन्मुख होता है—उसमें तन्मय होता है और राग से पृथक् हो जाता है। इस प्रकार अपना शुद्ध आत्मा ही सच्चा शरण है। बाह्य में पंच परमेष्ठी का शरण व्यवहार से है।
19. केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुखस्वभावी परम चैतन्य तेज मैं हूँ—ऐसा जिसने अन्तर्मुख होकर स्वयं अपने को जाना, उसने क्या नहीं जाना? स्वयं अपने को देखा उसने क्या नहीं देखा? तथा उसका श्रवण करने पर क्या श्रवण नहीं किया?—अर्थात् अपना ऐसा शुद्ध आत्मा ही श्रवण करने योग्य तथा श्रद्धा-ज्ञान में लेने योग्य सर्वश्रेष्ठ है, उससे ऊँचा अन्य कोई नहीं है।
20. अरे, जीवों ने व्यवहार की-राग की बातें तो अनन्त बार सुनी हैं और उसका आचरण भी किया है, परन्तु परम तत्त्व अन्तर में कैसा है, उस परमार्थ स्वरूप को प्रेम से कभी नहीं सुना।
21. 'प्रेम से नहीं सुना' ऐसा कहा। 'प्रेम से सुना' तब कहा जाता है कि अन्तर की गहराई में उतरकर उसका साक्षात् अनुभव करे। वक्ता ने जैसा स्वभाव कहा है, वैसा स्वभाव अपने लक्ष्य में लेकर अनुभव करे, तभी सच्चा श्रवण किया कहा जाता है।
22. हे जीव! अपने स्वभाव को तू अनुभव में ले। अन्दर में अमृत का सागर

भगवान आत्मा है, उसमें मग्न हो... वही आनन्द है। उससे बाह्य में जाना तो आकुलता है, पाप है, क्योंकि पवित्रता से विरुद्ध होने से अध्यात्म में उसे पाप कहा है। रागरहित चैतन्य का अनुभव ही पवित्र सुखरूप है।

23. ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मात्मा के हृदय में चैतन्यहंस निवास करता है। तथा चैतन्यशक्तिसम्पन्न आनन्दमय परमात्मा उसके अन्तर में जयवन्त वर्तता है।
24. अहो, ऐसा अनुभव करना, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का परम स्वाद है।
25. बादाम की बर्फी अच्छी स्वादिष्ट कही जाती है, परन्तु वह स्वाद तो जड़ है। यहाँ तो सन्त आनन्द के स्वाद से भरपूर वीतरागी बादामपाक परोसते हैं।
26. आज दोज के मंगल अवसर पर यह बादाम की बर्फी परोसी जा रही है। अन्तर में परमात्मा के अनुभवरूप ऐसा बादामपाक सम्यग्दृष्टि ही पचा सकते हैं।
27. ज्ञानी अपने को ऐसा अनुभव करता है कि—

    कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्तिस्वभाव जो,
    मैं हूँ वही, यह चिंतवन होता निरंतर ज्ञानि को॥

(नियमसार : 96)

28. आत्मा केवलज्ञानादि चतुष्टयस्वरूप है। केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय है, वह प्रगट कार्य है और उसके आधाररूप सहज ज्ञान-दर्शनादि चतुष्टय त्रिकाल है।—ऐसे चतुष्टयस्वरूप आत्मा को जानकर धर्मी उसी की भावना करते हैं।
29. —किस प्रकार भावना करते हैं?
    समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त होकर, तथा अपने स्वरूप में अत्यन्तरूप से अन्तर्मुख होकर, वह अपने ऐसे आत्मा को ध्याता है। मुमुक्षु जीवों को उसी की भावना करनी चाहिये—ऐसा उपदेश है।
30. समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से रहित कहा—उसमें अशुभ या शुभ किसी भी राग की रचना, वह सब बाह्यविस्तार है। बाह्यलक्ष्य से ही राग की उत्पत्ति होती है, अत: समस्त बाह्यभावों से अत्यन्त भिन्न होकर, निर्विकल्प

चैतन्यपरिणति के द्वारा ही धर्मी अपने अंतर में परमात्मतत्त्व की भावना करता है।

31. अहो, आत्मतत्त्व की यह अलौकिक बात है, इसे जानकर अन्तर्मुखरूप से इसी की भावना करने योग्य है।
32. 'राग तो है ना'—तो धर्मी कहता है कि भले हो, परन्तु वह राग कहीं मैं नहीं हूँ, अपने स्वभाव को मैं अनुभव रागरूप नहीं करता, लेकिन परिणति को राग से भिन्न करके, उस परिणति द्वारा केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करता हूँ, वही मैं हूँ।
33. राग होने पर भी मैं उसकी भावना नहीं करता, उसे अपनेरूप नहीं देखता, उस ओर मेरा झुकाव नहीं; मेरा झुकाव तो अपने चैतन्य परमात्मतत्त्व में है, उस ओर उन्मुख हुई परिणति में रागादि नहीं, इसलिए वह परिणति स्वयं प्रत्याख्यान स्वरूप है।
34. ऐसे आत्मा को जानकर उसकी निरन्तर भावना करना—ऐसी वीतरागी सन्तों की शिक्षा है।
35. अहो, चैतन्यतत्त्व तो परम गम्भीर है, उसमें परिणति अन्तर्मुख हो, तभी उसका वास्तविक चिन्तन एवं भावना होती है।
36. जीव द्रव्यस्वभाव से त्रिकाल ज्ञानस्वरूप तो है ही—परन्तु मैं त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा जानती ही है उस ओर एकाग्र हुई पर्याय; त्रिकाल सन्मुख एकाग्र हुई पर्याय ही जानती है—कि 'मैं ऐसा हूँ'।
37. ऐसी स्वसन्मुख परिणतिरूप परिणमित हो, तभी आत्मा ने अपने सहज स्वभाव का स्वीकार और अनुभव किया कहा जाता है। स्वयं उस भावरूप परिणति हुए बिना उसका सच्चा स्वीकार या अनुभव नहीं होता।
38. इस प्रकार स्व में अन्तर्मुख होकर मैंने अपने परम आत्मा को देखा, जाना तथा अनुभव किया। स्वयं अनुभव की हुई अपनी वस्तु में सन्देह क्या? स्व-वस्तु की अनुभूति होते ही सन्देह टला, भय टला, स्वयं अपने से तृप्त हुआ, निःसन्देह हुआ।
39. समस्त विकल्प-जंजाल को छोड़कर चैतन्य के निर्विकल्प अमृतरस का पान करो!

40. ज्ञानी सदैव ऐसी भावना भाता है कि मैं कारणपरमात्मा हूँ। ज्ञानियों के हृदय–सरोवर का हंस तो आनन्दरूप सहज चैतन्य परमात्मा है।
41. परभावों को सदैव अपने से पृथक् रखनेवाला, अर्थात् परभावों से सदैव रहित ऐसा चैतन्य–हंस, उसका ज्ञानी अपने हृदय में ध्यान करते हैं।
42. यह चैतन्य–हंस कारणपरमात्मा, सहज चतुष्टय–स्वरूप त्रिकाल है, वह स्वयं केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय का आधार है, उसे आधार–आधेय के भेद नहीं। आधार–आधेय सम्बन्धी विकल्पों से रहित अनुभूति द्वारा जो परमसुख उत्पन्न होता है, उसका स्थान यह सहज परमात्मतत्त्व है।
43. केवलज्ञानादि के आधाररूप ऐसे अपने तत्त्व का अवलोकन करके (श्रद्धा–ज्ञान करके) ज्ञानी उसकी ही भावना करते हैं। ऐसे तत्त्व की दृष्टि करके धर्मी कहता है कि ऐसे सहज स्वरूप से मैं सदा जयवन्त हूँ।
44. जयवन्त तत्त्व की सन्मुखता से जो सम्यक्–श्रद्धा–ज्ञान–सुख की अनुभूति प्रगट हुई, वह जयवन्त है।
45. परिणति परभाव से छूटकर जब अन्तर्मुख हुई, तब भान हुआ कि ऐसे स्वभाव से मेरा आत्मा जयवन्त है।
46. यह कोई विकल्प की बात नहीं है, किन्तु धर्मी को अपने अन्दर वैसे वेदनरूप परिणति हो गई है।
47. धर्मी को राग से निरपेक्ष, इन्द्रियों से निरपेक्ष ऐसे सम्यक् मति–श्रुतज्ञान स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप हैं, अन्तर्मुख होकर अपने सहज ज्ञानादि स्वरूप आत्मा को स्वयं जानता है।
48. आत्मा के सहज स्वभावरूप निजभाव को ज्ञानी कभी छोड़ता नहीं, और रागादि परभावों को कभी अपना बनाता नहीं, वह तो सहज ज्ञान–दर्शन–आनन्दस्वरूप ही अपना चिन्तवन करता है:—

निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिंतन यही॥97॥

(नियमसार)

49. आत्मा का सहज स्वभाव, वह परमभाव है, उस परमभाव के सन्मुख होकर

ज्ञानी अपने आत्मा को कैसा भाता है, उसका यह वर्णन है। ऐसे स्वभाव की भावना अर्थात् उसमें तन्मयभावरूप परिणति, वह परम आनन्दरूप तथा मोक्ष का कारण है।

50. निजभाव अर्थात् आत्मा का परम भाव, निजभाव आत्मा के सहज ज्ञान-दर्शन-सुख तथा वीर्यस्वभावरूप है, उसको आत्मा कभी छोड़ता नहीं। स्वभाव और स्वभाववान भिन्न नहीं हैं कि उन्हें आत्मा छोड़े! चैतन्य के ऐसे एकत्वस्वभाव में संसार-परभाव का प्रवेश कभी नहीं है।

51. मैं तीनों काल अपने ऐसे परम भावरूप ही हूँ—ऐसा जिस पर्याय ने अन्तर्मुख होकर स्वीकार किया, वह पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-सुखस्वरूप हुई है। पर्याय अन्तर्मुख होकर तथा रागादि से भिन्न होकर, 'परमभावस्वरूप कारणपरमात्मा मैं हूँ'—ऐसा अपने को अनुभवती है—जानती है—देखती है—भाती है।—ऐसे कारणपरमात्मा में उदयादि परभावों का कभी ग्रहण नहीं है।

52. अहो जीवो! ऐसे परमस्वभाव को लक्ष्य में लेकर उसकी भावना करनेयोग्य है। ऐसे स्वभाव की बात का श्रवण भी महा भाग्य से प्राप्त होता है। जिसकी पर्याय अन्तर्मुख परिणमित हुई है, वह धर्मात्मा ऐसा जानता है कि मैं तीनों काल सहज स्वभाव से परिपूर्ण परम आत्मा हूँ, मेरे स्वभाव का कभी नाश नहीं है। अरे, ऐसा मैं त्रिकाल हूँ—वहाँ कौन मुझे मारे और कौन मेरी रक्षा करे?

53. मेरा स्वभाव ही केवलज्ञानादि स्वभाव से सदा भरपूर है; उसका स्वीकार करने से अब पर्याय में अभूतपूर्व केवलज्ञानादि प्रगट होंगे ही। पर्याय में केवलज्ञानादि भाव नवीन प्रगट हुए, इसलिए वे अभूतपूर्व हैं, परन्तु सदैव सहज स्वभाव से तो केवलज्ञानादिरूप ही हूँ। उससे कभी भी पृथक् हुआ नहीं—ऐसा धर्मी अपना चिन्तवन करता है, जानता है, श्रद्धा करता है, अनुभव करता है—इसी का नाम भावना है। और यह भावना ही मोक्ष का उपाय है। अत: ऐसे परम तत्त्व की भावना निरन्तर करो। राग द्वारा उसकी भावना नहीं होती, रागादि परभावों का नाश करके चैतन्य की सनमुखता से

ऐसी भावना की जाती है।

54. अरे जीव! अन्तरस्वरूप की गहराई में उतर... वहीं तेरा आत्मा विद्यमान है। रत्न के लिये समुद्र में डुबकी लगानी पड़ती है, उसी प्रकार चैतन्य रस के समुद्र में से सम्यग्दर्शन आदि परम रत्नों की प्राप्ति के हेतु तू अन्तर की गहराई में उतर... समस्त परभावों को नाश करके चैतन्यचमत्कार से भरपूर चैतन्यसमुद्र में डुबकी लगा।

55. चैतन्यतत्त्व की गहराई में उतरी हुई अर्थात् उसके सन्मुख होकर परिणमित हुई परिणतिवाला जीव—'यह मैं हूँ'—इस प्रकार स्वयं को परमात्मस्वरूप देखता है—अनुभव करता है। अहो, अन्तर में लीन होकर ऐसे स्वतत्त्वरूप अपना अनुभव करो! एकावतारी इन्द्र भी जिसकी बात परम आदर से सुनते हैं—ऐसे इस परम तत्त्व को लक्ष्य में लेकर उसकी भावना करो... उसके सन्मुख परिणति करो।

56. एक इन्द्र अपने दो सागरोपम के आयु-काल में असंख्यात तीर्थंकर भगवन्तों के पंच कल्याणक महोत्सव मनाता है, असंख्यात तीर्थंकरों के श्रीमुख से ऐसे परमतत्त्व की बात बहुमानपूर्वक श्रवण करता है। —ऐसा यह परमात्म तत्त्व जीवों को महाभाग्य से सुनने को मिलता है।

57. और ऐसे तत्त्व की सम्यक् प्रतीति तथा अनुभव करे, वह तो कृतकृत्य हो जाता है। इसलिए हे जीवो! अन्तर्मुख होकर तुम अपने ऐसे तत्त्व को अनुभव में लो—ऐसा उपदेश है।

58. अन्तर में चैतन्यरस का आस्वादन करने के बाद मेरा चित्त अन्य कहीं लगता नहीं... चित्त चैतन्य में ही संलग्न है। निजस्वरूप में लगे हुए चित्त को पर की चिन्ता करने का अवकाश ही कहाँ है?

इन 58 मंगलरत्नों के मनन द्वारा हे मुमुक्षुओं!
तुम भगवती चेतना को प्राप्त करो!
चैतन्य अनुभूतिवन्त... ज्ञानचेतनापरिणत....
धर्मात्माओं को तदाकार नमस्कार!

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक 5

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

निर्जरा का वर्णन

जो पूरव सत्ता करम, करि थिति पूरन आउ।
खिरबेकौ उद्यत भयौ, सो निर्जरा लखाउ ॥32 ॥

अर्थः- जो पूर्वस्थित कर्म अपनी अवधि पूर्ण करके झड़ने को तत्पर होता है, उसे निर्जरा पदार्थ जानो ॥32 ॥

काव्य - 32 पर प्रवचन

पूर्व में अज्ञानभाव से बँधे हुए जो कर्म सत्ता में पड़े हैं, उनका अब आत्मभानपूर्वक संवरदशा में टलना-झरना-खिरना किस प्रकार होता है कि उन कर्मों की स्थिति पूर्ण ही होने को आई है और भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में पुरुषार्थ करके आया, अतः तुरन्त कर्म खिर जाते हैं।

देखो सेठ! यह धन आता है, वह तुम्हारी चतुराई से आता है, ऐसा नहीं है। पूर्व के पुण्य के कर्म सत्ता में पड़े हों, उसके गलने की तैयारी हो, तब ऐसे संयोग दिखाई देते हैं। कर्मों और संयोग में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, परन्तु तुम्हारी चतुराई से धन आता है, ऐसा नहीं है। हमने ऐसे बहुत से बुद्धिहीन मनुष्य देखे हैं, जिनके पास धन के ढेर हैं।

एक वृक्ष की डाल पर से फल खिरने की तैयारी हो, तब वह डण्ठल से भिन्न हो जाता है; वैसे ही पूर्वोपार्जित पाक के काल में सामने ऐसी योग्यतावाले संयोगों की व्यवस्था बैठ जाती है, उसमें आत्मा का पुरुषार्थ कुछ भी नहीं करता; तथापि वस्तुस्थिति से अनजान मनुष्य ऐसा मानते हैं कि हमने व्यवस्था बराबर रखी, काम-काज की डोर हाथ में रखी है, इससे इतने धनादि मिले हैं -तो यह उनका बड़ा भ्रम है।

पुण्य-पाप, आस्रव का भिन्न-भिन्न तत्त्वरूप से वर्णन करने के पश्चात् जो स्वरूप सन्मुख दृष्टि करके अन्तर्मुख हुआ और अतीन्द्रिय आनन्द पाया, उसे मिथ्यात्व का कर्म आना रुक गया-वह संवरतत्त्व कहा।

अब निर्जरा के तीन प्रकार हैं; एक तो, शुद्धोपयोग की उग्रता करना, वह निर्जरा है। पंचास्तिकाय में तो शुद्धोपयोग को ही निर्जरा कहा है। दूसरी, शुभाशुभभावरूप अशुद्धोपयोग न होना अर्थात् उसका नाश होना वह निर्जरा है और तीसरी, कर्मों का खिर जाना वह निर्जरा है, वह जड़ की निर्जरा हुई।

भाई ! यह तो अभ्यास करे तो समझ में आवे- ऐसा है। फिर से लेते हैं:- शुभ और अशुभभाव, वह अशुद्धोपयोग है, बन्ध का कारण है। वह नहीं हुआ, गल गया -वह नास्ति से निर्जरा हुई और शुद्धोपयोगरूप पवित्रता की प्राप्ति -वह अस्ति से निर्जरा हुई और उस समय कर्म अपनी स्थिति पूर्ण करके खिर जाते हैं -वह जड़ की निर्जरा (द्रव्यनिर्जरा) है।

कर्म तो जड़ हैं, उन्हें लाना या हटाना, आत्मा का कार्य नहीं है। आत्मा कर्मों का स्वामी नहीं और कर्म आत्मा के दास नहीं, दोनों स्वतन्त्र तत्त्व है, परन्तु यहाँ जीव के शुद्धोपयोगरूप परिणाम होने से अशुद्धता का नाश होता है, तब कर्म उसकी अपनी योग्यता के खिर जाते हैं। जीव तो शुद्धोपयोग का उद्यम करता है और अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करता है, वह कोई कर्म में फेरफार नहीं करता।

उपवासादि क्रिया से कर्म नहीं खिरते। छहढाला में आता है कि 'मुनिव्रतधार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो...। इस जीव ने अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया, पंच महाव्रतों का पालन किया, अट्ठाईस मूलगुण धारण किये, चमड़ी उतारकर उस पर नमक छिड़कें, फिर भी क्रोध न करे- इतनी क्षमा रखी; परन्तु आत्मा का भान नहीं किया। इस कारण समस्त पुण्य की क्रियाओं से कर्म बाँधता था।

सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की इन्द्रों और गणधरों की उपस्थिति में दिव्यध्वनि द्वारा कही हुई यह बात है। कुन्दकुन्दाचार्य सीमन्धर भगवान के पास गये थे, उन्हें दो हजार वर्ष हो गये हैं। महाविदेहक्षेत्र में अभी भी सीमन्धर भगवान विराजते हैं और अभी भविष्य में अरबों वर्षों तक रहेंगे। बहुत लम्बा -करोड़ पूर्व का उनका आयुष्य है।

करोड़ पूर्व किसको कहते हैं– यह खबर है? घर में धन कितना है, उसकी तो खबर रखते हो और इसमें कहोगे कि यह तो भगवान जानें। तो भगवान तो जानते ही हैं; परन्तु यह भगवानभाई को भी जानना चाहिए न! करोड़ पूर्व की स्थिति ऐसी है कि एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष चले जाते है; इतने वर्ष का तो एक पूर्व और ऐसे करोड़ पूर्व की स्थिति पूर्ण होगी, तब सीमन्धर भगवान मोक्ष में पधारेंगे। अनन्त काल की तुलना में तो यह स्थिति भी अल्प ही है।

संवत् उनपचास (49) में कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ महाविदेह गये थे। आठ दिन रहे थे और आकर इस समयसार की रचना की थी। उसके ऊपर नौ सौ वर्ष पूर्व हुए अमृतचन्द्राचार्य ने कलश रचे और उन पर पण्डित राजमल्लजी पाण्डे ने (बालबोधिनी) टीका रची और उस पर से कविवर पण्डित बनारसीदासजी ने यह नाटक समयसार बनाया है।

उसमें यहाँ निर्जरा के वर्णन में कहते हैं कि उस समय कर्मों के तो गलने का समय था ही; परन्तु जीव ने उससमय क्या पुरुषार्थ किया ?कि जीव ने स्वभावसन्मुख की जागृति में विशेष शुद्धता प्रकट की। पुण्य-पाप का विकल्प छूटकर निर्विकल्प चैतन्य भगवान आत्मा में उग्र पुरुषार्थ से जग गया। उसका नाम निर्जरा कहने में आता है।

अरे! अनन्त बार मनुष्यपना मिला, अनन्त बार साधु हुआ, त्यागी हुआ; परन्तु अपना मूल तत्त्व क्या है? उसका ज्ञान नहीं किया और तत्त्व की दृष्टि बिना तो किंचितमात्र भी संवर या निर्जरा नहीं होते। यहाँ कहते हैं कि "खिरवे को उद्यत भयौ" अर्थात् क्या ?कि कर्मों के खिरने की तैयारी हुई और आत्मा अपनी स्वभावसन्मुखता के पुरुषार्थ में जुड़ गया। चैतन्यनूर, स्वभाव के पूर में प्रवेश करके विशेष शुद्धता प्रकट की उसे पुरुषार्थ से निर्जरा की ऐसा कहा जाता है।

ये बातें कठिन लगने से साधारण समाज के जीव तो यों के यों ही परिभ्रमण करके मरते हैं। पैसेवाले दान देकर धर्म मान लेते हैं। बलवान

शरीरवाले क्रिया करके धर्म मान लेते हैं और बलवान मनवाले अर्थात् क्षयोपशम ज्ञान के उघाड़वाले बातें करके धर्म मान लेते हैं।

इस जीव ने चौरासी लाख योनी में एक-एक में अवतार धारण किया है, परन्तु भूल गया है; तो क्या अवतार नहीं किये ? अरे ! नरक के एक क्षण के दु:ख सुने नहीं जा सकें, वैसे नरक में अनन्त बार जाकर आया है। नरक में कम से कम आयु दश हजार वर्ष है और अधिकतम स्थिति तैंतीस सागर प्रमाण है। एक सागर में कोड़ाकोड़ी पल्योमप की स्थिति होती है और एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग में असंख्य अरब वर्ष होते हैं। पूर्व में करोड़ पूर्व की स्थिति कही थी। ऐसे तो असंख्य अरब करोड़ पूर्व होते हैं, तब एक सागर होता है। इतने लम्बे काल की स्थितिवाले सातवें नरक में भी जीव अनन्त बार हो आया। एक अपने आत्मा का ज्ञान नहीं, सम्यग्दर्शन क्या है, उसका भान नहीं- इससे अज्ञान में जीव ने नरकगति में जो दु:ख भोगे हैं, वे या तो भगवान जानते हैं या स्वयं भोगता है; वाणी में वे आ सकें ऐसा नहीं है।

जीव ने अनन्त नरक के भव किये, उससे असंख्यगुने अनन्त स्वर्ग के भव किये, जहाँ अकेला पुण्यफल मिलता है; अत: दुनिया तो उसे अमरधाम-वैकुण्ठ मानती है। ऐसे स्थान में इकतीस-इकतीस सागर की स्थिति में अनन्त बार जा आया; परन्तु पुण्य-पाप से रहित, आनन्दस्वरूप आत्मा कि जिसको विकल्प के सहारे की भी जरूरत नहीं, उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि जीव ने कभी नहीं की। परमात्मा के द्वारा कथित आत्मा की यह बात जीव के अन्तर में कभी नहीं बैठी। ऐसा भी कुछ होता होगा इस प्रकार कुछ न कुछ बचाव करके अटक गया है।

सर्वथा बन्ध का अभाव वह तो मोक्ष है; परन्तु बन्ध का एकदेश अभाव होकर वास्तव में आंशिक पवित्रता प्रकट हो, उसे निर्जरा अथवा शुद्धता कहने में आता है। थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए। अभी तो तत्त्व किसे कहना- यह ज्ञान भी न हो और धर्म हो जाय ऐसा कभी नहीं हो सकता।

अनन्त काल थी आथड्यो, बिना भान भगवान।
सेव्या नहीं गुरु संत ने, मूक्यो नहिं अभिमान।।

सन्तों की बात मिली नहीं और हम जानते हैं- ऐसे अभिमान ही अभिमान में रह गया, परन्तु शास्त्रज्ञान- यह कोई वस्तु नहीं है। चीज तो यह है कि जो अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ में दृष्टि और स्थिरता से निर्जरा प्रकट करे, वह वस्तु-चीज है। वरना तो उपवास कर-करके मर जाए तो भी निर्जरा नहीं होती।

जगत को रुचे या न रुचे, परन्तु मार्ग तो ऐसा ही है। हमारे पास मक्खन लगाने की बात नहीं है कि पैसेवाले को धर्म होता है और गरीब को धर्म नहीं होता। परमात्मप्रकाश में योगीन्दुदेव ने पंचम काल के पैसेवाले कैसे हैं- यह लिखा है कि पुण्य से वैभव मिलता है, वैभव से मद होता है और मद से मति भ्रष्ट हो जाती है। हम ही कुछ बड़े हैं. गरीबों को तो कुछ गिनते ही नहीं और मतिभ्रष्ट होने से अविवेक से पाप बाँधता है. ऐसा पुण्य हमें नहीं चाहिए।

आत्मा के अनुभवपूर्वक शुभभाव आवें और पुण्य बँध जाये, उसमें तो शुभभाव का आदर नहीं। इस कारण उसके फल के समय, यह मेरा हैं- ऐसा अभिमान नहीं होता; परन्तु ऊपर जो कहा, वह तो अज्ञानी के पुण्य की बात है। मिथ्यादृष्टि को पुण्य भी पाप का ही कारण बनता है।

प्रभु-आत्मा रजकण और राग के अंश से भिन्न है। कर्म, वह रजकण है और शुभ-अशुभभाव राग का अंश है। उन दोनों तत्त्वों से भगवान आत्मा एक भिन्न तत्त्व है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरा'- ऐसे परमात्मस्वरूप में उपयोग उग्ररूप से एकाग्रता प्रकट करे; उसको यहाँ निर्जरातत्त्व कहने मे आता है और इस निर्जरा के भाव के निमित्त से कर्म स्वयं स्वत: गलकर खिर जाते हैं, उसे द्रव्यनिर्जरा कहते हैं।

बन्ध का वर्णन

जो नवकरम पुरानसौं, मिलैं गांठि दिढ़ होइ।
सकति बढ़ावै बंस की बंध पदारथ सोइ॥33॥

अर्थ :- जो नवीन कर्म पुराने कर्म से परस्पर मिलकर मजबूत बँध जाता है और कर्मशक्ति की परम्परा को बढ़ाता है, वह बन्ध पदार्थ है ॥33 ॥

काव्य - 33 पर प्रवचन

अब बन्धतत्त्व का वर्णन करते हैं। संवर में नये कर्म रुकते हैं, निर्जरा में पुराने कर्म खिरते हैं, परन्तु यह बन्धतत्त्व क्या है ? कि पुराने कर्मों के साथ नये कर्मों को जोड़ देता है, वह बन्ध है।

भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप है, पुण्य-पापभाव, वह भावबन्ध है और जड़कर्म बँधते हैं, वह द्रव्यबन्ध है। जो नये कर्म पुराने कर्मों के साथ परस्पर मिलकर मजबूत बँध जाते हैं और कर्मशक्ति की परम्परा को बढ़ाते हैं, वह बन्धपदार्थ है।

मिथ्यादृष्टि को स्वरूप के अज्ञान में नये कर्म पुराने कर्मों के साथ मिलकर मजबूत गाँठ बना देते हैं, इससे कर्म का बन्ध बढ़ जाता है। निर्जरा में शुद्धता का वंश बढ़ता है और इस बन्ध में कर्म का वंश बढ़ता है।

यह तो जिसको चारों गतियों में दुःख लगा हो और उसमें से निकलना हो, उसके लिए बात है। राग में कहीं भी सुख लगता हो तो वह तो मिथ्यादृष्टि है। जो स्वर्ग में भी आनन्द मानता है, वह मूढ़ है। सुख तो एकमात्र आत्मा में है, उसके बदले शरीर में, लक्ष्मी में, सेठपने में, इज्जत में सुख माने; वह मूढ़ है। अपना आनन्द पर में माननेवाला तो मूढ़ ही होगा न !

अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर, शरीरादि अजीवतत्त्व को और रागादि आस्रवतत्त्व को अपना मानकर अज्ञानी मूढ़ जीव नये कर्म बाँधता है और पुरानों के साथ नये कर्म मिलने से कर्म की गाँठ को बहुत दृढ़ बनाता है।

यह मार्ग जुदा है भाई ! दुनिया के साथ मिलान करने जायेगा तो कहीं नहीं मिलेगा।

जिसकी दृष्टि आत्मा में नहीं और पुण्य-पाप, आस्रव और अजीवतत्त्व में जिसकी दृष्टि है, उसके पुराने कर्म तो सत्ता में पड़े ही है, और नये बाँधता है, वे दोनों मिलकर कर्म की गाँठ को मजबूत बना देते हैं।

'सकति बढ़ावे वंस की, बंध पदारथ सोई'- पदार्थ कहो या तत्त्व कहो या वस्तु कहो -सब एक ही है। वस्तुरूप से तो प्रभु बन्ध से रहित है; परन्तु ऐसी दृष्टि नहीं और पुण्य-पापादि भावबन्ध और द्रव्यबन्ध से मैं सहित हूँ ऐसी दृष्टि होने के कारण मिथ्यादृष्टि नये कर्म बाँधकर कर्म की शक्ति को पुष्ट करता है। देखो! यह बन्ध की व्याख्या है।

पुरुषार्थसिद्धि उपाय की 14 वीं गाथा में लिया है कि आत्मा कर्म और कर्म के निमित्त से होनेवाले पुण्य-पाप भाव से रहित है, उसे सहित मानना- यही भव का बीज है। अहा हा..! आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म (नोकर्म) से रहित होने पर भी सहित मानना ही भव का बीज है, यही बन्ध का कारण है।

मोक्ष का वर्णन

थिति पूरन करि जो करम, खिरै बंधपद भानि।
हंस अंस उज्जल करै, मोक्ष तत्त्व सो जानि॥34॥

अर्थ:- जो कर्म अपनी स्थिति पूर्ण करके बन्ध दशा को नष्ट कर लेता है और आत्मगुणों को निर्मल करता है, उसे मोक्ष पदार्थ जानो॥34॥

काव्य - 34 पर प्रवचन

श्री नाटक समयसार की उत्थानिका का यह 34 वाँ श्लोक है, जिसमें कविवर ने 'मोक्षतत्त्व' का वर्णन किया है।

भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप है। उसमें जो रागादि विकार हैं, वे बन्धस्वरूप हैं, उस बन्ध का एकदेश नाश होना, उसका नाम निर्जरा अथवा धर्म है और उसका सर्वथा नाश होना, उसका नाम मोक्ष है।

जैसे हंस की चोंच में खटास है, वह दूध और पानी को भिन्न कर देती है; वैसे ही यह आत्महंस निज शुद्धात्मा के आश्रय से रागादि आस्रवों का नाश करके आत्मा अपने अंश को अर्थात् दशा को उज्जवल करता है और उस दशा को पूर्ण निर्मल करे, उसका नाम मोक्ष है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी आत्मसिद्धि में कहते हैं:-

मोक्ष कही निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ।
समझाव्यो संक्षेप में, सकलमार्ग निर्ग्रन्थ॥

अपनी पर्याय में पूर्ण शुद्धता हो, उसका नाम मोक्ष है और अपूर्ण शुद्धता हो, उसको साधकदशा अथवा संवर-निर्जरा कहते हैं। सम्पूर्णरूप से राग-द्वेषादि भावों का नाश और आंशिक शुद्धता का प्रकट होना, वह धर्म अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, वही संवर-निर्जरा है।

मोक्ष यानी सिद्धशिला में जाकर लटकना, वह मोक्ष नहीं। अपनी पर्याय में मलिनता का पूर्णरूप से नाश होकर पूर्णरूप निर्मलता की प्राप्ति होने का नाम मोक्ष है।

अरे! इसे अपने स्वरूप की ही खबर नहीं और भ्रमणा से अनादि काल से भटक रहा है। अनन्त बार स्वर्ग का देव हुआ, अनन्त बार राजा हुआ और अनन्त बार सौ बार रोटी माँगने पर भी मुश्किल से रोटी मिले, ऐसा भिखारी हुआ। यह सब इसके लिए कोई नया नहीं है। नया तो यह है कि अपने आनन्दधाम भगवान के ज्ञायकधाम में प्रवेश करना और राग से हटना। यह कभी इस जीव ने किया नहीं। अनन्त काल में एक समय भी यह काम जीव ने नहीं किया। अतः कहते हैं कि प्रभु! तेरा भगवान आत्मा पूर्ण निर्मल चिद्कंद है। चिद् अर्थात् ज्ञान का कन्द है। उसकी दशा में मिथ्यात्व का सम्पूर्ण नाश और राग-द्वेष का आंशिक नाश करके निर्मलदशा प्रगट करने का नाम धर्म है, वही मुक्ति का कारण है।

समाधिशतक में पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि मैं दूसरों को समझाऊँ- ऐसा विकल्प आता है, वह उन्माद है; क्योंकि वह भी राग है न! भगवान आत्मा तो रागरहित निर्विकल्प चैतन्यघन है। उसमें अन्य को समझाने का विकल्प या अन्य द्वारा समझने का विकल्प- ये दोनों उन्माद हैं। आत्मा में वाणी तो है नहीं कि जिससे दूसरों को समझावे या समझे और विकल्प उठता है, वह तो राग है; वह राग भी कुछ समझता नहीं है। अतः राग से भी जीव समझता नहीं। आत्मा तो रागरहित निर्विकल्प विज्ञानघन है, जिसमें समझने

या समझाने के विकल्प की गन्ध भी नहीं है। अत: पर्याय में जो रागादि के एकत्व से मलिनता खड़ी हुई है, उसे भिन्न करके निर्मलता प्रकट करना, वह संवर-निर्जरारूप जीव का प्रथम धर्म है।

छहढाला में दौलतरामजी कहते हैं कि 'लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ, तोरि सकल जग दंद फंद निज आतम ध्याओ।' यह छहढाला तो बहुतों को कण्ठस्थ होती है। व्यापार-धन्धा करते-करते भी ये भाव याद कर सकते हैं। उसमें कहा है कि लाख, करोड़ और अनन्त बातों का सार यह है कि पूर्णानन्दनाथ भगवान आत्मा को ग्रहण कर ले।

'हंस अंस उज्ज्वल करे'- पुण्य-पाप का विकल्प है, वह पानी समान है और भगवान आत्मा ज्ञानानन्द रसकन्द है -इन दोनों को भिन्न जानकर ज्ञानानन्द में एकाकार होकर राग-द्वेष रूप पानी को पृथक् कर देने का नाम धर्म है और ऐसा धर्म करनेवाले आत्मा को हंस कहा है। भाव समझे, वह हंस है। भाव समझे बिना कोई परमहंस नहीं।

यह नव तत्त्वों का वर्णन पूरा हुआ और अब छह द्रव्यों के नाम व उनके स्वरूप का वर्णन करते हैं।

भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में एक समय में तीन काल व तीन लोक को देखा, उसमें छह द्रव्य देखे हैं - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। संख्या अपेक्षा तो द्रव्य अनन्त हैं, परन्तु जाति अपेक्षा छह हैं, उनके नामान्तर कहते हैं। यह तो नाटक है न! अत: जैसे नाटक में, अब यह पात्र प्रवेश करता है ऐसा कहकर पात्र का परिचय देते हैं न! वैसे ही यहाँ भी वस्तु का स्वरूप बताते हैं।

हमने तो बाल्यावस्था में नाटक देखे हैं न। उस समय तो नाटक बहुत वैराग्यमय होते थे। अभी तो अनीति और अराजकता बहुत बढ़ गई है। धर्म के नाम पर झगड़े होने लगे हैं। उस समय तो धर्म को कोई जानता ही नहीं था। किन्तु नीति बहुत थी, नैतिक जीवन था। अभी तो अनैतिकता और कालाबाजारी बहुत बढ़ गई है।

शेष पृष्ठ 28 पर.....

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यवर

श्री अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव

नन्दिसंघ देशीयगण सम्बन्धित मान्यता है कि उनकी शिष्य-प्रशिष्य की दृष्टि से, यह संघ अनेक शाखा-प्रशाखाओं में बँट जाता है। अतः दीक्षागुरु एक शाखा के होने पर भी शिक्षागुरु विभिन्न प्रशाखा का हो सकता है—ऐसा अन्दरोन्दर उस समय चलता रहता होगा। उस अनुसार उक्त देशीयगण में भिन्न-भिन्न मत पनपे हों ऐसा प्रतीत होता है। अतः मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ, कोण्डकुन्दान्वय की इंगलेश्वरी शाखा के श्री समुदाय में एक माघनन्दी भट्टारक हुए। उनके नेमिचन्द्र भट्टारक और आचार्य अभयनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती ये दो शिष्य हुए।

आचार्य अभयनन्दिजी आचार्य गुणनन्दि के (शिक्षा) शिष्य थे तथा इन्द्रनन्दि व नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के समवयस्क दीक्षागुरु और वीरनन्दि के शिक्षागुरु थे। आचार्य अभयनन्दिजी को सिद्धान्तचक्रवर्ती की उपाधि प्राप्त थी। अतः आपके इन तीनों शिष्यों (इन्द्रनन्दिजी, नेमिचन्द्रजी, तथा वीरनन्दिजी) को भी वह सहज ही मिल गई।

इनके अलावा आचार्य अभयनन्दिजी के कई शिष्य हुए हैं, उनमें बालचन्द्र पण्डित प्रिय शिष्य थे। आपके शिष्यों के बारे में हलेबीड़, रावन्दूर, भारंगी, हुम्मच आदि अनेक स्थानों में गुणगरिमा के कई शिलालेख मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि आप अपने समय के महासमर्थ आचार्य भगवन्त होंगे।

आपका ज्येष्ठ शिष्य बुल्लगौड़ था। जिसका पुत्र गोपगौड़ कर्नाटक प्रदेश के 'नागरखण्ड' का शासक था, आपके लिए शिलालेखों में बताया गया है, कि आप छन्द, न्याय, शब्द, समय, अलंकार, व प्रमाणशास्त्र आदि के विशिष्ट विद्वान थे।

शेष पृष्ठ 28 पर.....

श्री मोक्षमार्गप्रकाशकजी का जैनश्रुत में स्थान

– 'शाश्वत' मुक्ति जैन, तीर्थधाम मंगलायतन

इसमें संशय–शंका को कोई गुंजाइश नहीं है कि समस्त ब्रह्माण्ड की एकमात्र वेशकीमती निधि, सम्यग्दर्शन ही है। इस पावन रत्न की उपलब्धि का मुख्यतया अमोघ साधन, धर्म–देशना ही है। इस देशनारूप तीर्थ के मूलकर्ता तीर्थंकर कहलाते हैं। इसी तीर्थ से संप्राप्त उपदेशों को गणधर मुनिराज, 'श्रुत' के रूप में परिणमाते हैं–प्रवाहित करते हैं। इस जैनसंविधान (श्रुत) के दस्तावेज को परम्परागत विरागी श्रमण तथा ज्ञानी गृहस्थ, परम्परागत श्रोताओं तथा पाठकों की रुचि, आयु, बुद्धि, योग्यता का भान रखकर तथा द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावादि की स्थिति–परिस्थिति के अनुसार आगे बढ़ाते रहते हैं। वीतरागतामय पुनीत आशय को सुरक्षित रखते हुए शब्द–विन्यास आदि बदलता रहता है। जैसे–उन्हीं मोतियों को अनेकानेक तरह से गूँथकर–पिरोकर नाना जीवों के आकर्षण का विषय बनाया जाता है, उसी प्रकार कभी संस्कृतादि भाषा में परिवर्तन करके तो कभी प्रथमानुयोगादि अनुयोग में परिवर्तन करके; कभी गद्य–पद्यादि शैली बदलकर तो कभी संक्षेप–विस्तारादि आकार बदलकर या फिर विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, संदृष्टि आदिरूप में जिनश्रुत का सृजन होता रहता है। पण्डितजी इसी को 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' कहकर पुष्ट करते हैं।

पण्डितजी स्वयं इस बात की गवाही देते हैं कि वे तीर्थंकरादि से प्रवर्तमान श्रुतधारा को ही आगे बढ़ा रहे हैं। 'अपनी बात' में सर्वज्ञ के वचनानुसारी समयसारादि ग्रन्थों के गहन अभ्यास से प्राप्त ज्ञान के आधार से ही 'मोक्षमार्गप्रकाशक', लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं। वे लिखते हैं कि 'जिस प्रकार प्राकृत–संस्कृत शास्त्रों में प्राकृत–संस्कृत पद लिखे जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ अपभ्रंशसहित अथवा यथार्थतासहित देशभाषारूप पद लिखते हैं; परन्तु अर्थ में व्यभिचार नहीं है' (पृ. 11)। पण्डितजी आगे लिखते हैं 'इस ग्रन्थ में जैसा पूर्व ग्रन्थों में वर्णन है, वैसा ही वर्णन करेंगे अथवा कहीं पूर्व ग्रन्थों में सामान्य गूढ़ वर्णन था, उसका विशेष प्रगट करके वर्णन यहाँ करेंगे। सो इस प्रकार वर्णन करने में मैं तो बहुत सावधानी रखूँगा।' (पृ. 13)। आगे 'चुक्केज छलं ण घेत्तव्वं' की तर्ज पर बुद्धिमानों से यह प्रार्थना करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं कि कहीं सूक्ष्म अर्थ का अन्यथा वर्णन हो तो वे उसे शुद्ध करे। (पृ. 14)

परम वीतरागता का पोषक होने से 'मोक्षमार्गप्रकाशक' जैनश्रुत का अविभाजी अंश है, यह निर्विवाद तथ्य है। इस ग्रन्थ के पठन का फल

परमकल्याणमय अवस्था है, ऐसी सूचना पण्डितजी प्रत्येक अधिकार के अन्त में करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

मोक्षमार्गप्रकाशक, समस्त शास्त्र समुद्र का अद्वितीय–बेजोड़ रत्न है। इस ज्वाजल्यमान नक्षत्र के होने से जैनसाहित्यभण्डार में एक और शास्त्र की बढ़ोतरी हुई है, इतना मात्र देखना बड़ी धृष्टता होगी तथा इस ग्रन्थ के साथ किया गया भारी अन्याय होगा क्योंकि मोक्षमार्गप्रकाशक जिनश्रुतश्रृंखला की वह महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जिसके होने से समयसारादि पूर्व कड़ियों का सच्चा मूल्यांकन सम्भव हो पाया तथा उत्तर कड़ियों का सद्भाव सम्भव हो पायेगा अर्थात् जिनश्रुत की जिन्दादिली पंचम काल के अन्त तक बरकरार रहेगी। पण्डितजी स्वयं इस ग्रन्थ को 'महाग्रन्थ' कहकर तथा हमारे सामने आने को 'उदय होता है' कहकर तथा 'अथ' से प्रारम्भ कर, हमारे जीवन में होनेवाले मंगल की अगवानी के लिए तैयार रहने की मानो सूचना ही करते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक के पूर्व विद्यमान, अथाह तथा गम्भीर शास्त्रसमुद्र में से हमारा प्रयोजनभूत रत्न ढूँढना, कष्टप्रद तो था ही बल्कि भ्रामक भी था और शायद इसीलिए बनारसीदास आदि दिव्य पुरुषों के पास समयसार कलश टीका जैसी विभुतियाँ विद्यमान होने पर भी उनकी भ्रष्टता टल नहीं पायी।

स्वच्छंदता और कर्तृत्वबुद्धि के बीच चलती रस्साकशी को अंकुशित करने के लिए, पुरुषार्थ और दैव की संधि कराने के लिए मोक्षमार्गप्रकाशक ने अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। दरअसल ग्रन्थों की तथा उनके ज्ञाताओं की भरमार पूर्व में होने पर भी आवश्यकता थी कुछ योग्य दिशानिर्देश की कि जिससे पर्याप्त सावधानियों के बीच में जिनशासन के हार्द को अचूक तरीके से हासिल किया जा सके। 'अब जो जीव जैन हैं, जिन–आज्ञा को मानते हैं' (पृ. 193) 'जैसी शास्त्र में आज्ञा है उस प्रकार मानते हैं' (पृ. 215) 'जिनशास्त्रों से–जीव के त्रस–स्थावरादिरूप तथा गुणस्थान–मार्गणादिरूप' भेद को जानता है, अजीव के पुद्गलादि भेदों को तथा उनके वर्णादि विशेषों को जानता है' (पृ. 225), 'यह शास्त्राभ्यास में तत्पर रहता है। वहाँ सीखना, सिखाना, याद करना, वाँचना, पढ़ना आदि क्रियाओं में तो उपयोग रमाता है' (पृ. 235)–इन कथनों से यह बात फलित होती है कि उस समय भी शास्त्राभ्यासियों की कोई कमी नहीं थी। कमी थी अपेक्षाओं के समझने की और यह दुरुह तथा गुरुतर कार्य मोक्षमार्गप्रकाशकजी ने सफलरूप से निर्वाह किया है। अतः यह जैनश्रुत परम्परा में अपना स्थान दृढ़ता से स्थापित करने के लिए सफलता की चोटी पर विराजमान है।

मोक्षमार्गप्रकाशक, पाठकों से ठेठ संवाद करता है। जिस प्रकार आज के राजनेता 'मन की बात' के जरिए एक–एक नागरिक तक पहुँचने का प्रयास करके उनकी समस्या के समाधान का भरसक उपाय करते हैं, ठीक उसी प्रकार पण्डितजी हमारे जीवन में, हमारे स्तर पर उतरकर मार्गदर्शन ही नहीं करते हैं वरन् जैसे–अपने गुमराह बच्चे की ऊँगली पकड़कर माँ, उसे सच्ची दिशा में ले जाती है, उसी प्रकार पण्डितजी हमारे उत्थान के अवसर को हमारे सामने रख देते हैं। पण्डितजी लोक के गहन ज्ञाता थे। ढाई सौ वर्ष पूर्व भी उनके दैनिक प्रवचनों में हजार–बारह सौ श्रोतागण चातक की भाँति रसास्वादन के इच्छुक थे। संपूर्ण भारतवर्ष में शास्त्राभ्यास में किसी प्रकरण में फँसे पेंच का सुलझाव होने का एकमात्र केन्द्र स्वयं पण्डितजी थे। अपनी आयु में अर्जित समग्र अनुभव को अपनी लेखनी के द्वारा ग्रन्थ में उड़ेलते हैं। पृ. 220 पर आये प्रयोजन से विमुख भक्त, सच्चे देवादि की परीक्षा से रहित सेवक, पात्र के विचार से रहित दानी, महंतता का अभिलाशी तपस्वी, असंतुलित व्रतादि का धारक, बढ़ाई पर दृष्टि रखनेवाले पूजा–प्रभावना के कर्ता, पद्धतिरूप शास्त्राभ्यासी आदि की खूब खबर लेते हैं। हरेक धार्मिक अनुष्ठान की झड़ती लेने के बहाने हरेक आयोजन में प्रयोजन पर दृष्टि रखने की प्रेरणा देते हैं।

पण्डित टोडरमलजी मनोविज्ञान के प्रकाण्ड ज्ञाता हैं। अद्भुत तरकीब से वे पाठक पर छा जाते हैं जिससे पाठक साक्षरता से ऊपर उठकर सुशिक्षित होने में सफल हुआ है। सुखी होने का उपाय बताने के पूर्व प्रथम चार अध्यायों में जीव को उसके वर्तमान में दुःखी होने की स्वीकृति दिलाने का सफल प्रयास किया है। सुखी होने की दिशा में वर्तमान में दुःखी होने की स्वीकृति प्रथम चरण है। वे कहते हैं–सो हे भव्य! अपने अन्तरंग में विचारकर देख कि ऐसा ही है कि नहीं। विचार करने पर ऐसा ही प्रतिभासित होता है। यदि ऐसा है तो यह मान कि 'मेरे अनादि संसार रोग पाया जाता है, उसके नाश का मुझे उपाय करना, इस विचार से तेरा कल्याण होगा' (पृ. 44), ऐसा पढ़ते समय ऐसा भासित होता है कि जैसे पण्डितजी हमारी पीठ पर हाथ फेरकर हमें अपना बना लेते हैं। जैसे–लोक में गाय को खिलाते–पिलाते समय उसका मालिक उसके माथे तथा पीठ पर हाथ फेरता है, उसी प्रकार यह प्रक्रिया है। गले में हाथ डालकर एक दोस्त दूसरे दोस्त को जो नसीहत देता है, वही कारगार होती है, ऐसे लोक में भी देखते हैं।

हे भव्य! हे भाई!! तुझे संसार के दुःख दिखाए, वे तुझ पर बीते हैं या नहीं,

वह विचार! और तू जो उपाय करता है, उन्हें झूठा दिखाया, वे ऐसे हैं या नहीं, वह विचार!! तथा सिद्धपद प्राप्त होनेपर, सुख होता है या नहीं, उसका विचार कर!!! यदि तुझे जैसा कहा है, वैसी ही प्रतीति आती हो तो तू संसार से छूटकर, सिद्धपद प्राप्त करने का हम जो उपाय कहते हैं, वह कर! विलम्ब मत कर!! (पृ.75) तथा 'हे भव्य!' (पृ.94) कहकर वे हमसे मित्रता साधते हैं।

पण्डितजी धीरता के सागर हैं। सामने वाले की अपेक्षा पहले पूर्ण रीति से सुनते ही नहीं, उसकी किसी अपेक्षा से यथार्थता भी कहते हैं परन्तु 'परन्तु' लगाकर धीरे से प्रकृत की अभीष्ट अपेक्षा बताकर उसे युक्ति–संगत करते हैं। जैसे निश्चयाभासी पहले से ही स्वाध्याय से विमुख है और ऊपर से ग्रंथ के प्रमाणसे बाह्य शास्त्रों में विचरती बुद्धि को व्यभिचारिणी सिद्ध करता है। इस पर पण्डितजी निम्न प्रकार समाधान करते हैं–'यह सत्य कहा है। बुद्धि तो आत्मा की है; उसे छोड़कर परद्रव्य–शास्त्रों में अनुरागिनी हुई, उसे व्यभिचारिणी ही कहा जाता है। परन्तु स्त्री, शीलवती रहे तो योग्य ही है और न रहा जाए, तब उत्तमपुरुष (पति) को छोड़कर, चाण्डालादि (पर पुरुष) का सेवन करने से तो अत्यन्त निन्दनीय होती है; उसी प्रकार बुद्धि, आत्मस्वरूप में प्रवर्ते तो योग्य ही है और न रहा जाए, तो प्रशस्त (शुभ) शास्त्रादि परद्रव्यों को छोड़कर, अप्रशस्त (अशुभ) विशयादि में लगे तो महानिन्दनीय ही होती है परन्तु मुनियों की भी बुद्धि, स्वरूप में बहुत काल तक नहीं रहती तो तेरी कैसे रह सकती है?' (पृ. 201) धैर्य की इस मिसाल में सामनेवाले का दुःख दर्द बाँटने जैसी स्थितिकरण की प्रवृत्ति से पण्डितजी यथार्थ मार्ग कहकर अचूक अवसर ढूँढ ही लेते हैं।

पण्डितजी प्रसंग देखकर साम और दाम के बाद इनके अलावा कुछ दण्डादि नीतियों का भी प्रयोग करते हैं। 'स्वाधीन उपदेशदाता गुरु का योग मिलने पर भी जो जीव धर्म वचनों को नहीं सुनते वे धीठ हैं, और उनका दुष्ट चित्त है। अथवा जिस संसार भय से तीर्थंकरादि डरे उस संसारभय से रहित हैं, वे बड़े सुभट हैं; (पृ. 20) ऐसी चेतावनी देते हैं तो किसी को शिथिल और स्वच्छंदी देखकर–'प्रारब्ध के अनुसार तो कार्य बनता ही है', तू उद्यमी होकर, भोजनादि किसलिए करता है ?यदि वहाँ उद्यम करता है तो 'त्याग करने का भी उद्यम करना', योग्य ही है। जब तेरी दशा प्रतिमावत् हो जाएगी, तब हम प्रारब्ध ही मानेंगे; तेरा कर्तव्य नहीं मानेंगे; इसलिए स्वच्छन्द होने की युक्ति किसलिए बनाता है ? अतः जो बने, वह प्रतिज्ञा करके, व्रत धारण करना योग्य ही है।' (पृ. 204) कहकर जोर की फटकार भी लगाते हैं। 'वहाँ तत्त्वनिर्णय न

करने में, किसी कर्म का दोष नहीं है; तेरा ही दोष है परन्तु तू आप तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष, कर्मादि को लगाता है लेकिन जिन–आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है।' (पृ.311) कहकर धुतकारते तथा उसे खंगालते हुए भी नजर आते हैं।

द्वादशांग के सारभूत मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ में सभी विषयों पर मतलब का प्रकाश डाला गया है। जैसे–जो लोग तथाकथित गृहशान्ति आदि में उलझकर अथवा ज्योतिषशास्त्र पढ़कर स्वयं को अन्य के भाग्यविधाता मानकर अपना जीवन दाँव पर लगाते हैं।, उन्हें कहते हैं 'ग्रहादि स्वयमेव गमनादि करते हैं और प्राणी के यथासंभव योग को प्राप्त होने पर सुख–दुःख होने के आगामी ज्ञान को कारण होते हैं' (पृ.173)

जे लोग प्राणायाम–योग को मोक्षमार्ग में कथंचित उपादेय कहने में तथा योगशास्त्र पर अधिकार जमाने में कुछ उपलब्धि मानते हैं उन्हें 'इनमें क्या सिद्धि' (पृ. 121) तथा 'इनके साधने से आत्महित कैसे हो सकेगा?' (पृ. 121) कहकर सावधान किया है।

साथ ही वैद्यकशास्त्र में बहुत नहीं लगना (पृ. 288) व्याकरण–न्यायादि शास्त्र हैं, उनका भी थोड़ा–बहुत अभ्यास करना। (पृ. 294) ऐसी–ऐसी अमूल्य शिक्षाएँ भी पण्डितजी जाते–जाते दे गए हैं।

मोक्षमार्गप्रकाशक के माध्यम से पण्डितजी, गोम्मटसार में वर्णित कर्मसिद्धान्त का संक्षिप्त व प्रयोजनभूत ज्ञान कराते हैं। अट्ठाईस मूलगुणों का अखण्डित पालन (पृ.3) नगरवास निषेध (पृ. 183), मुनिलिंग में मंत्र–यंत्र तथा तिल–तुषमात्र के परिग्रह का निषेध है, और यहाँ तक कि पीछी, कमण्डल तथा शास्त्र के दुरुपयोग का धिक्कार करते हुए श्रमणधर्म की प्रतिष्ठा करके मूलाचार का विषय बताया है। दसवी–ग्यारहवीं प्रतिमाधारी तथा मुनिलिंग के अलावा अन्य समस्त लिंग के श्रद्धा का त्याग कराके (पृ. 178) श्रावकधर्म पर तो प्रकाश डाल ही दिया है बल्कि व्यक्तिवाद पनपने की संभावना को भी तारतार कर दिया है। एकमात्र चारित्रवंत ही पूज्य होते हैं ऐसा कहकर हीनलक्ष्य को छुड़ाया है। पाँचवें अध्याय के निमित्त से श्लोकवार्तिकादि गंभीर ग्रंथों का संक्षेप में रहस्य समझ में आता है।

मोक्षमार्गप्रकाशक ने 'अपनी डफली–अपना राग' आलापनेवाली तथा कोई निश्चय के नाम पर तो कोई व्यवहारनय के नाम पर बँटनेवाली समाजों को एकसूत्र में पिरोने का महत्कार्य किया है। (जातैं मिलै समाज सब) सबको अपना–अपना एकान्त छोड़ने की प्रेरणा दी है। चारित्र का होना चौथे

गुणस्थान में या सातवें गुणस्थान में ? इस बिन्दु पर चलनेवाली प्रदीर्घ बहस आखिर यथार्थ विवक्षाओं के तहत शान्त हो गयी है (पृ. 314, 337) सल्लेखना पर चल रहे विवाद का भी परोक्ष हल यहाँ से होता है। (पृ. 190)

मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी के अदम्य साहस का दर्शन होता है। उन्होंने जिनश्रुत के ही बुनियादी प्रकरणों को अद्‌भुत और नए तरीके से परोसने का प्रथम सफलतम प्रयास किया हैं। पंच परमेष्ठी की पुरुषार्थपरक परिभाषाएँ, प्रयोजनभूत तत्त्व, गृहीत–अगृहीत मिथ्यात्व, सात तत्त्व संबंधी भूल, सम्यग्दर्शन के विविध लक्षणों का औचित्य तथा समन्वय, चारों अनुयोगों का औचित्य तथा समन्वय, निश्चयाभासी आदि 4 आभासवाले मिथ्यादृष्टियों का निरुपण आदि प्राचीन प्रकरणों में नयापन तथा ताजगी भर दी है।

अधिक कहने से क्या? जिसे मोक्षमार्गप्रकाशक का सांगोपांग ज्ञान हो चुका है, उसे बाकी हजारों शास्त्रों से भी क्या? सौ सुनार की और एक लुहार की।

....पृष्ठ 21 का शेष

यहाँ अपने इस नाटक के पात्र का वर्णन चलता है। उसमें वस्तु अर्थात् जिसमें अनन्त गुण बसते हैं, उसका नाम वस्तु है। गोम्मटसार में यह बात आती है कि कोई भी आत्मा हो या परमाणु हो; परन्तु जिसमें अनन्त गुण रहते हैं, वह वस्तु है। भगवान ने वस्तु रूप से अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्‌गल, एक धर्म, एक अधर्म, एक आकाश और असंख्य कालाणु ऐसी छह प्रकार की वस्तुयें देखी हैं। उनके नाम तो अनेक हैं, उनमें से अमुक नाम इस प्रकार हैं। क्रमशः

....पृष्ठ 22 का शेष

आपने अपने जीवन में (1) 'कर्मप्रकृति' नामक ग्रन्थ की रचना की है। (२) कर्मप्रकृति रहस्य, (3) तत्त्वार्थसूत्र की तात्पर्यवृत्ति टीका, (4) पूजा कला, (5) (सम्भवत:) जैनेन्द्र व्याकरण की महावृत्ति टीका की रचना की है।

इतिहासकारों ने देशीयगण गुर्वावली में आपका समय ई.सं. 930–950 दर्शाया है।

आचार्य श्री अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तीदेव भगवन्त को कोटि कोटि वन्दन।

समाचार-दर्शन

'जैन संस्कार ई-शिक्षण शिविर' सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के पुण्य प्रभावना योग में, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर की प्रेरणा से, तीर्थधाम चिदायतन, हस्तिनापुर, मेरठ के तत्त्वावधान में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, मेरठ द्वारा **'जैन संस्कार ई-शिक्षण शिविर'** का **25 मई से 31 मई 2020** का आयोजन हुआ।

कार्यक्रम के शुभारम्भ में 25 मई को पण्डित हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; श्री पवन जैन, अलीगढ़; श्री अजीत जैन दिल्ली और श्री सुरेश जैन रतिराज, राष्ट्रीय अध्यक्ष भारतीय जैन मिलन का उद्‌बोधन हुआ।

इस महाशिविर में भारत के सभी राज्यों और विदेश के हजारों लोगों ने भाग लिया। इसमें सुबह 08.00 से 09.00 बजे तक जिनेन्द्र पूजन, उसके पश्चात् बाल और प्रौढ़ वर्ग को पाँच वर्गों में विभाजित करके सुबह 09.30 से एवं दोपहर में 04.00 बजे से ऑनलाइन कक्षाओं का संचालन हुआ।

सायंकाल 07.00 बजे से जिनेन्द्र भक्ति, 07.30 बजे से सामूहिक कक्षाओं का विभिन्न विद्वानों के द्वारा संचालन किया गया, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, डॉ. संजीव गोधा, जयपुर; डॉ. वीरसागर जैन, दिल्ली; श्री पवन जैन, अलीगढ़; डॉ. मनीष जैन, मेरठ; बालब्रह्मचारी श्रेणिक जैन जबलपुर; पण्डित विपिन जैन, नागपुर; पण्डित विराग जैन, जबलपुर; पण्डित एस.पी. भारिल्ल, जयपुर आदि विद्वानों का मार्मिक उद्‌बोधन प्राप्त हुआ।

सामूहिक कक्षा उपरान्त प्रतिदिन सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया, जिसमें सभी साधर्मियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया।

इस शिविर में पंच परमेष्ठी, देव-शास्त्र-गुरु, जीव-अजीव (सामान्य), सच्चे जैन, णमोकार महामन्त्र, चार मंगल, तीर्थंकर भगवान, जीव-अजीव (विशेष), पाप कषाय, गतियाँ, द्रव्य, चार अनुयोग, द्रव्य-गुण-पर्याय, तीन लोक और भक्तामर स्तोत्र संस्कृत अर्थ सहित जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय समझाए गये।

ऑनलाईन परीक्षा 31 मई को प्रात: हजारों साधर्मियों ने परीक्षा दी और सायं के समय परीक्षा परिणाम घोषित किया गया।

प्रौढ़ वर्ग की कक्षा का संचालन पण्डित निखिल शास्त्री, मेरठ द्वारा हुआ। उन्होंने

भक्तामरस्तोत्र पर प्रतिदिन कक्षा ली, जिसमें लगभग 500 लोगों ने भाग लिया। शिविरोपरान्त भी कक्षा की लोकप्रियता के कारण प्रतिदिन संचालन हो रहा है।

शिविर निर्देशक अजय जैन एवं सौरभ जैन के साथ-साथ रोहित जैन, संयम जैन, आयुष जैन, अपार जैन, पूजा जैन, अतुल जैन एवं पाठशाला की पूरी टीम विवेक जैन, समकित जैन, सुदीप जैन आदि ने भी कार्य को तकनीकी सहायता प्रदान की।

शिविर का समापन 31 मई को सायं श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर; श्रीमती वीना जैन, देहरादून; श्री अजीत जैन, बड़ोदरा; श्री आई.एस. जैन, मुम्बई; श्री आशीष जैन शामली एवं निशान्त जैन, आईएएस, मेरठ इन लोगों का आशीर्वाद वचन हुए; संस्था के महामन्त्री श्री सौरभ जैन ने सबका आभार प्रकट किया एवं श्री अजयकुमार जैन ने सम्बोधन देकर सभा का समापन किया।

सभी विद्वानों एवं साधर्मियों द्वारा शिविर के सम्पूर्ण कार्यक्रम की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की।

गुरुवाणी मंथन शिविर सम्पन्न

श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुम्बई एवं श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई के द्वारा संयुक्तरूप से आयोजित पंचम गुरुवाणी मंथन शिविर ऑनलाइन सम्पन्न हुआ, जिसका उद्घाटन दिनांक 27 मई 2020 को श्री नेमिषभाई शान्तिलाल शाह, मुम्बई द्वारा किया गया।

दिनांक 27 मई से 31 मई तक आयोजित इस शिविर में प्रतिदिन प्रात:काल जिनेन्द्र-पूजन एवं गुरुदेवश्री द्वारा नियमसार, गाथा 47-48पर सी.डी. प्रवचन हुआ। तत्पश्चात् पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलिया ने गुरुदेवश्री के प्रवचनों के मुख्य बिन्दुओं के आधार पर चर्चा की। दोपहर की सभा में आध्यात्मिक पाठ के पश्चात् गुरुदेवश्री द्वारा प्रवचनसार, गाथा 192 पर सी.डी. प्रवचन हुआ, जिसके मुख्य बिन्दुओं पर पण्डित रजनीभाई दोशी, हिम्मतनगर द्वारा चर्चा की गयी। रात्रि में जिनेन्द्र-भक्ति के उपरान्त समयसार, गाथा 15 पर हुए गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों पर पण्डित चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा चर्चा की गयी। अन्तिम दो दिनों में डॉ. शान्तिकुमार पाटील जयपुर द्वारा गुरुदेवश्री के समयसार कलश 120 पर हुए स्वाध्यायों पर चर्चा हुई। इस प्रकार सम्पूर्ण शिविर गम्भीर आध्यात्मिक चर्चा के साथ सम्पन्न हुआ। इसके साथ ही प्रतिदिन एक-एक तीर्थक्षेत्र का वीडियो भी दिखाया गया।

विशेष कार्यक्रमों के अन्तर्गत मुमुक्षु समाज के विद्वत्रत्न पण्डित लालचन्दभाई

मोदी, बाबू जुगलकिशोरजी युगल, पण्डित रतचन्दजी भारिल्ल, ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी बेलोकर, पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा, डॉ. उत्तमचन्दजी सिवनी, पण्डित वीरेन्द्रजी आगरा एवं कान्तिभाई मोटानी को भी विशेषरूप से याद किया गया।

कार्यक्रम में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री अनन्तराय ए. सेठ, महामन्त्री श्री बसन्तभाई एम.दोशी, मन्त्री श्री महिपालजी ज्ञायक एवं सहमन्त्री श्री विनुभाई शाह के उद्‌बोधन का भी लाभ प्राप्त हुआ।

समस्त कार्यक्रम निर्देशन श्री विराग शास्त्री के नेतृत्व में मुम्बई के संगठन जैनेक्स्ट के सहयोग से एवं पण्डित ज्ञायक शास्त्री मुम्बई के विशेष सहयोग से सम्पन्न हुआ।

वैराग्यसमाचार

सोनगढ़ : बालब्रह्मचारिणी भानुबेन का पूज्य गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान के घोलनपूर्वक शुद्धात्म भावना भाते हुए शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है। आप पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त श्री खीमचन्दभाई सेठ की सुपुत्री थी। आपने पूज्य गुरुदेवश्री से ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। आपसे श्री पवनजी जैन, अलीगढ़ ने सोनगढ़ रहकर तत्त्वज्ञान पढ़ा-सीखा था।

बांसवाड़ा : श्रीमती रूपारीबाई का शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है। आप पण्डित महीपालजी ज्ञायक व धनपालजी ज्ञायक की मातुश्री थीं।

कानपुर : श्रीमती मीना जैन धर्मपत्नी श्री केशवदेव जैन, कानपुर का शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है।

ललितपुर : मङ्गलार्थी श्री मयंक जैन का आकस्मिक देह परिवर्तन हो गया है। आप पण्डित भानुकुमार शास्त्री के सुपुत्र थे। आप तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के विद्यार्थी थे।

उदयपुर : पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य अनुयायी वयोवृद्ध धर्मानुरागी श्री सुजानमलजी गदिया का शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है। वीतरागी जिनधर्म की प्रभावना में आपका समर्पित एवं महनीय योगदान रहा है।

कोलकाता : श्रीमती राजकुमारी जैन लीला धर्मपत्नी स्व. श्री महावीरप्रसाद

जैन लीला का शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है। आप अत्यन्त स्वाध्यायी एवं निरन्तर तत्त्वज्ञान प्राप्त किया करती थीं।

करहल : श्रीमती मीनारानी जैन धर्मपत्नी स्व. श्री धनेशचन्द्रजी जैन सिंघई का शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है। आप मङ्गलार्थी अमन जैन की दादीजी थीं।

हाथरस : प्रो. एम.एल. जैन का शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष स्नेह था। आप हाथरस जैन समाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से एक थे।

सहारनपुर : श्री राजकुमार जैन का शान्तिपरिणामों से देह परिवर्तन हो गया है। आप शान्तपरिणामी एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के प्रत्येक शिविरों में पधारते थे।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हों—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

आगामी कार्यक्रम

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा आयोजित

43वाँ आध्यात्मिक ई-शिक्षण शिविर

19 जुलाई से 28 जुलाई 2020 तक आयोजित होने जा रहा है।

पाठकों से निवेदन

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए मङ्गलायतन पत्रिका नहीं छप पा रही है। अत: आप www.mangalayatan.com / पत्रिका ऐप से पढ़ सकते हैं। आपको हुई परेशानी के लिए खेद है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन की वेबसाईट का नवीनीकरण.....

तीर्थधाम मङ्गलायतन की वेबसाईट (www.mangalayatan.com) पर प्राचीन आचार्यों एवं पण्डित, विद्वानों द्वारा रचित हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ और वर्तमान में मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित सत्साहित्य उपलब्ध है। जो भी साधर्मी लाभ लेना चाहे। वह इनको डाउनलोड कर उपयोग में ले सकते हैं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर स्वाध्याय की अद्भुत शृंखला तैयार की जा रही है। आप सभी YouTube पर Teerthdham Mangalayatan, Aligarh Channel को Subscribe कर इन स्वाध्याय का लाभ ले सकते हैं तथा मङ्गलायतन में आयोजित भक्ति, अन्य विद्वानों के स्वाध्याय का भी लाभ ले सकते हैं। Link - https://www.youtube.com/channel/UCwxazHz6NGTe6TQCMx8C5sQ

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना–प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे–भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम – **'मङ्गल वात्सल्य–निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य–निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000x12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व–पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें – ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम ....

पता ....

.... पिन कोड ....

मोबाइल .... ई-मेल ....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	: SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	: HDFC BANK
BRANCH	: RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	: 50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	: HDFC0000380
PAN NO.	: AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, नि:शुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,

अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन

अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर सत्साहित्य मँगायें

नि:शुल्क मँगायें (मात्र डाकखर्च देकर)

मंगल समर्पण

मोक्षमार्गप्रकाशक (नवीन संशोधित)

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (छह भाग)

(पण्डित कैलाशचन्द्रजी जैन द्वारा संकलित)

50 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

छहढाला (रंगीन सचित्र, अंग्रेजी)

25 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

स्वतन्त्रता की घोषणा

स्वाधीनता का शंखनाद

भक्तामर रहस्य

पंचास्तिकाय संग्रह

छहढाला (रंगीन सचित्र, हिन्दी)

पंच कल्याणक प्रवचन

आध्यात्मिक पाठ संग्रह

वैराग्य उपावन माही...

दशधर्म प्रवचन

वह घड़ी कब आयेगी ?

साहित्य मँगाने का पता -

तीर्थधाम मङ्गलायतन

अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-204216 (हाथरस)(उ.प्र.)

मोबा : 9997996346, 9756633800

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com